समकालीन संस्कृत कविता में स्त्री विमर्श

स्मृति शुक्ला
प्रवक्ता संस्कृत
राजकीय बालिका इण्टर कालेज,
सिराथू, कौशाम्बी
मो0 : 8574823201
E-mail : shuklasmriti978@yahoo.in

नारी विमर्श–

स्त्री सदा से ही सृष्टि व समाज का महत्त्वपूर्ण अंग रही है, फलतः इसे साहित्य में भी स्थान मिलना स्वाभाविक है। जहाँ तक सम्पूर्ण संस्कृत– वाङ्मय का आकलन करें तो पायेंगे कि इसमें नारी का एक प्रतिष्ठित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। वैदिक साहित्य, उपनिषत् साहित्य, पौराणिक व लौकिक साहित्य जैसे महाकाव्य, कथा, उपन्यास, नाटकादि में नारी–प्रशस्ति प्राप्त होती है। न केवल वेदाध्ययन में अपितु यज्ञादि कर्मों में भी नारी की उपस्थिति विशेष महत्त्व रखती थी। वेदों में 'उषस् सूक्त' के माध्यम से जहाँ एक ओर नारी की स्वतन्त्रता का समर्थन किया गया है वहीं उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी इत्यादि विदुशी नारियों के रूप में स्त्री–प्रतिष्ठा की स्थापना की गई है। स्मृति ग्रन्थों में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का समुद्घोष सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत कर देता है। नारी–प्रशस्ति की यह श्रृंखला रामायण, महाभारत, रघुवंशम्, मालविकाग्निमित्रम् आदि ग्रन्थों द्वारा आगे बढ़ती है। किन्तु इसके ही समानान्तर 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' कहते हुए पारम्परिक संस्कृत कविता में नारी की स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया। रामायण व महाभारत में जनकात्मजा व द्रुपदसुता के प्रति हुए व्यवहारों ने नारी की विडम्बनात्मक पीड़ापरक स्थितियों को भी स्पष्ट कर दिया। शनैः शनैः बदलते युगों व शताब्दियों में समस्त विश्व के विविध घटनाक्रमों एवं हलचलों का भी प्रभाव स्त्री के अस्तित्व पर पड़ा पर प्रायः उसकी पीड़ाएँ अनभिव्यक्त ही रहीं। परम्परागतशृंगार और रोमांस से हटकर मानवीय सुख–दुःख आशा–निराशा विशेषतः पुरुष–प्रधान रूढ़िवादी भारतीय समाज में नारी की दयनीय दशा एवं जीवन संघर्ष का चित्रण आधुनिक–संस्कृत–कविता करती है।

आधुनिक–संस्कृत–कविता के प्रारम्भिक काल में जो सामाजिक परिदृश्य था उसमें स्त्री की स्थिति बहुत उन्नत नहीं कही जा सकती। बाल–विवाह और सती–प्रथा जैसी कुरीतियाँ सीधे तौर पर स्त्रियों के अस्तित्व एवं जीवन जीने के अधिकार पर हस्तक्षेप कर रही थी। विडम्बना यह भी थी कि धर्मान्ध भारतीय समाज द्वारा इसका पुरजोर समर्थन भी किया जाता था। किन्तु तार्किक एवं वैज्ञानिक शिक्षा से सम्पन्न नवीन जागरण के पक्षधर

कतिपय भारतीय समाज सुधारकों ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, राजाराम मोहन राय, जगन्नाथ शंकर सेठ, भाऊ दाजी, विष्णु शास्त्री पण्डित, करसोन दास मूलजी, डी0के0 माटवे, वीरसलिम पंतुल इत्यादि के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1829ई0 में सती–प्रथा विरोधी कानून एवं 1856ई0 में 'विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने का यथासम्भव प्रयास किया गया। ये समाज–सुधारक जहाँ स्त्रियों की दशा में उन्नति हेतु प्रयत्न कर रहे थे वहीं संस्कृत–साहित्यकारों ने भी इस दिशा में प्रयास किये। संस्कृत–साहित्य तो प्रारम्भ से ही स्त्री–सम्मान का उद्घोषक रहा है, अतएव मानवता को दग्ध करने वाली इस सती–प्रथा की अमानवीय धर्मप्रेरित रूढ़ि की हिमायत करने वालों पर कटाक्षपूर्वक आक्रोशात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी कहते हैं–

यत्र नार्यस्तु दह्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

अन्नं जलं बलं राष्ट्रे सतीदाहेन जायते।।

एक ओर जहाँ इस प्रकार के आक्षेपात्मक स्वर द्वारा इस कुप्रथा का विरोध किया गया है वही दूसरी ओर 'विधवाओं' की दुर्दशा सुधारने हेतु विधवा–विवाह को प्रोत्साहन देते हुए आचार्य रामावतार शर्मा जी कहते हैं–

समैथुने विवाहे तु विधवा कामतः पतिम्।

पुनर्द्वितीयं कुर्वीत न तु गर्भादिपातनम्।।

(श्री रामावतारशर्मनिबन्धावली, पृष्ठ 265)

पति–निधन पर विधवा का जीवन निष्प्रयोजन नहीं है और दैवप्रदत्त प्राणों के हरण का अधिकार किसी को भी नहीं है। अतएव नारी के अस्तित्व की नाषिका सती–प्रथा के विरोधपूर्वक विधवा–विवाह का समर्थन न केवल समाज सुधारकों अपितु संस्कृत के आधुनिक–कालीन काव्यकारों द्वारा भी किया गया।

स्त्री–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक–संस्कृत–कविता, पारम्परिक–संस्कृत –कविता की अपेक्षा नितान्त भिन्न है। 'या देवी सर्वभूतेषु'..... कहते हुए पारम्परिक–संस्कृत–साहित्य जहाँ एक ओर स्त्री को अर्चनीय एवं उपासनीय मानता है वहीं दूसरी ओर स्त्री के अंग–प्रत्यंग के अनौचित्यपूर्ण वर्णन एवं भोग्या के रूप में वर्णित करता है। यहाँ तक कि काव्यशास्त्रीय व नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी इसी उपभोग का नायिका भेद का आधार भी नारी के प्रति दुराव का ही बोध कराते हैं। पारम्परिक संस्कृत–कविता का अधिकांश भाग स्त्री को पुरुषावलम्बी एवं सम्भोग्या के रूप में ही उल्लिखित करता रहा है। आधुनिक–संस्कृत–कविता में स्थिति थोड़ी पृथक् है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि पिछली कुछ शताब्दियों में स्त्री की सामाजिक स्थिति एवं जीवन शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन आए हैं, अतएव साहित्य में भी यह परिवर्तन परिलक्षित होना स्वाभाविक ही है। आधुनिक काल की नारी पुरुषों के ही समान सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत है। जीवन–वृत्ति के लिए सचेष्ट वह कहीं भी आने–जाने को स्वतन्त्र है, वह स्वावलम्बी है और कदाचित् स्वच्छन्द भी, तथापि नैतिक पतन की पराकाष्ठा के

कारण स्त्री के अस्तित्त्व का संघर्ष और भी अधिक बढ़ गया है। वर्तमान काल में नारी की स्थिति द्विविध रूपों में है– एक ओर तो वह स्वतन्त्र है किन्तु वहीं दूसरी ओर अनेकानेक प्रपीड़नों से पीड़ित भी है। अपसंस्कृति का बढ़ता दुष्प्रभाव और नैतिक मूल्यों का ह्रास अथवा संवेदनहीनता की पराकाष्ठा– कारण चाहे जो भी हो इन सबके कारण हो रही दुरवस्था व सन्त्रास की दंश स्त्री ही झेल रही है। तथापि आशावादी पक्ष यह है कि आधुनिक–संस्कृत–कवियों का एक वर्ग स्त्री की इस पीड़ा को स्वर देकर जनसामान्य के चित्त को उद्वेलित करने का कार्य कर रहा है। इन कवियों ने न सिर्फ स्त्री पीड़ा को स्वर दिया है अपितु उसकी एवं उसके स्वाभिमान के संरक्षण हेतु भी अपनी लेखनी को प्रवृत्त किया है।

आधुनिक समाज में नारी की स्थिति का स्पष्ट प्रतिबिम्ब आधुनिक संस्कृत कविता में है। 21वीं शताब्दी में जहाँ एक ओर नारी आकाश की उच्चता का भी स्पर्ष कर चुकी है वहीं विडम्बनापरक स्थिति यह है कि आज भी यौतुकलोभियों द्वारा नववधुएँ प्रताड़ित की जा रही हैं। इसी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए आधुनिक कवि हरिदत्त शर्मा अपनी कविता 'यौतुकहतकम्' नामक कविता में लिखते हैं कि इस नवीन युग में आज भी सीता अग्नि–परीक्षा दे रहीं हैं, उपालम्भनात्मक स्वर में वे कहते हैं कि धिक्कार है! 20वीं शताब्दी में भी नववधुएँ जलाई जा रही हैं–

नवयुगे नवमानवा रे! का दशेयं सुविपरीता?

पतति दहनेऽद्यापि सीता

ज्वलति दहनेऽद्यापि सीता।.....

वर्धते धनचयस्पर्धा चार्थमनुधावति समाजः।

भिक्षते स सुसभ्यनव्यो याचते स हि राजराजः।।

काऽधुनिकता चोन्नतिः का धिगिति विंशशतीह वीता?

ज्वलति दहनेऽद्यापि सीता.....

इस कविता की भावपूर्ण पंक्तियाँ किसी सामान्य पाठक को भी अश्रु–प्लावित कर सकती हैं, ऐसा शाधकर्त्री का व्यक्तिगत अनुभव रहा है। 'नारी– अस्तित्त्व–नाशिका' इस यौतुक प्रथा के विरूद्ध अनेकानेक संस्कृत कवियों ने अपना रोष व शोक प्रकट किया है। इन कुप्रथाओं के विरूद्ध आधुनिक संस्कृत–कवियों की भावुकता समाज–सुधारक व उपदेशक के समान है। यद्यपि दैनन्दिन घटित होती इन दुष्प्रथाओं का मूलोच्छेदन सामान्य कार्य नहीं है तथापि आधुनिक–संस्कृत–कवियों ने अपनी काव्य–पंक्तियों के द्वारा इन कुन्द हो चुकी निरर्थक रूढ़ियों के पोषकों पर सीधा प्रहार किया है। सहृदयों के अन्तस् को वेदना व टीस से परिपूर्ण करती गीतकार श्रीनिवास रथ महोदय की ये काव्य पंक्तियाँ कवि की अकुलाहट को व्यक्त करने के साथ–साथ मर्म का भेदन भी करती हैं:–

जननी–जनक–सखीजन–चिन्ता–सजल–नयन–सम्प्रेषित–दुहिता।

श्वसुर–सदन–लोभानल–दग्धा–जीवितेश–निलयं निवेशिता।

किमिति सपदि नववधू विशसनं, दैनन्दिनी–प्रथा।

विपत्रितेयं जीवनलिका, दूरे कुसुम कथा..... ।[1]

इसी प्रकार 'यौतुकः पाप–संचयः' नामक गीतकथा के माध्यम से डॉ0 एस0एल0 उनियाल जी उपदेशक के रूप में दहेज–प्रथा का विरोध करते हुए लिखते हैं–

मूर्खा लुब्धाश्च ते लोके, ये हि याचन्ति यौतुकम्।

ते एव ज्ञानिनः सन्ति, नहि याचन्ति यौतुकम्।।17।।

सुखमिच्छन्ति लोके ये, नहि याचन्ति यौतुकम्।

यौतुकं हि यतो लोके, पापिनां खलु मूलकम्।।18।।[2]

वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी–कृत दाय (यौत) 'यौतुकदानवः' नामक कविताएँ भी दहेज की दुष्प्रथा के प्रति विरोध प्रकट करती है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी भी सोत्प्रास शैली में इस प्रथा के विरूद्ध अपने 'कान्यकुब्जलीलालमृतम्' नामक कृति में अपनी अभिव्यक्ति देते हैं।[3] उल्लेखनीय है कि अपने अस्तित्त्व एवं अस्मिता के लिये संघर्ष करती स्त्री की अनभिव्यक्त पीड़ा को प्रायः संस्कृत कवियों ने अपना स्वर दिया है।

आधुनिक–संस्कृत–कविता की स्त्री–विमर्श का एक अन्य पक्ष है– परम्परा से आई उन मान्यताओं का विरोध जो स्त्री को संस्कार–निर्वहन के अधिकार से भी वंचित करता है। प्रवेश सक्सेना अपनी कविता 'नास्तिमेऽधिकारः' में परम्परा पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए लिखती हैं कि माता के उदर से जन्म लेने और माता की सेवा–सुश्रुषा करते रहने पर भी माता की मृत्यु के अनन्तर दाहकर्म का अधिकार पुत्री के अंश में नहीं आया–

परमद्य यदा त्वम्। माम् परित्यज्य। अपरे लोके गतासि।

अहं जीवनसंघर्षे। एकाकिनी। तिष्ठामि। तव वियोगे। उत्कण्ठिता च!

एकं चान्यद्। महद् दुःखम्। वर्तते!

तव चितादाहकर्मणः।पश्चाच्च।श्राद्धकर्मणः(कथम्)।नास्ति मेऽधिकारः।

(अनुभूतिः पृष्ठ 19–20, प्रवेश सक्सेना)

वस्तुतः 'स्त्री–विमर्श' एक सामाजिक क्रान्ति का भी आवाहन करता है। स्त्री का स्वतन्त्र अथवा अन्य रूप में स्वच्छन्द–चिन्तन और युगों–युगों के बाध्यतापरक बन्धन से मुक्ति के लिए मिथ्या मर्यादाओं के बन्धन को उतार कर रख देने की मानसिकता 'स्त्री–विमर्श' की आधुनिकतम स्वरूप उद्घाटित करती है–

महिलावर्षस्यावसाने/भवत्याम् एकस्याम्/गोष्ठ्याम्/एका महिला/ खेदपूर्वकमवदत्/ सर्वे सम्बन्धाः/धर्मेण भवितुम् शक्नुवन्ति/ (यथा धर्मभ्राता, धर्मभगिनी)/तर्हि वयम् धर्मपतिम्/कर्तुं कथं न शक्नुमः/ अस्मिन् विषये तु/विचार एव न कृतः/अस्मिन् महिला वर्षे!

(अनुभूतिः, पृ0 23–24)

आधुनिक संस्कृत कविता में 'स्त्री–विमर्श' के रूप में जहाँ एक ओर नारी–प्रपीड़न का पक्ष उद्घाटित होता है वहीं दूसरी ओर वर्जनाओं के जगत् का पुरजोर प्रतिरोध करती स्वच्छन्द एवं क्रान्तिमती नारी का भी चित्रण प्राप्त होता है। समसामयिक युग यदि स्त्री की उन्नति का साक्षी है तो प्रतिपल नारी के साथ हो रहे अनेकानेक पाशविक अत्याचारों का भी साक्षी बन रह रहा है। कितनी दुःखद स्थिति है कि प्रतिक्षण नारी शीलहरण का दंश झेल रही है। प्रतिदिन समाचार–पत्रों में इस प्रकार की दुरवस्थाओं का उल्लेख संवेदनशील संस्कृत–कवियों के अन्तस् पर आघात पहुँचाता है जो काव्य–पंक्तियों के रूप में उद्घाटित होता है। श्री रमापति महोदय की कविता 'कीदृषी दुःशीलता' इसी वेदना की अभिव्यकित है–

हा! कीदृषी दुःशीलता/वर्षस्याभिनवप्रभातम्!/पत्न्या चायं नीतम् /सेवकेन चामृतप्रभातम्/मत्तः पूर्वं अत्र/ पालितशुना गृहीतम् किंचिद् भ्रंशितंच/तेनाहं क्रुद्धः शीघ्रमाहृत्य वाचयन्नचिन्तयम्/कथमनेन/ पंचवर्षीयकन्याबलात्कारवृत्तं भ्रंषितम्?/अथ च मया ताडितोऽपि गर्जति?/मन्ये मम मनुष्यत्वमुपहसति/यत्पशूनामप्यसंभवेन कर्मणा/ बलात्कारेण धन्यमिदं भारतवर्षम्/शुभं स्यादभिनवं वर्षम्।[4]

16 दिसम्बर 2012 को दिल्ली की शर्मनाक घटना पर भी संस्कृत कविताएँ ज्ञात हुई है, जिनमें युवा कवयित्री संस्कृता मिश्रा (स्व0 वीरभद्र मिश्र जी की सुपुत्री) की एक कविता मेरे समक्ष आई, किन्तु अप्रकाशित होने के कारण यहाँ उल्लेख नहीं कर रही हूँ।

आज प्रत्येक ओर महिला सशक्तीकरण का शोर है फिर भी वर्तमान समय में स्त्री प्रतिक्षण अपने सम्मान–संरक्षण हेतु भयभीत रहती है। प्रतिपल जीर्ण–शीर्ण किये जाते सम्मान से आहत स्त्री की दुःसह वेदना को अभिव्यक्त करते हुए महाराजदीन पाण्डेय जी कहते हैं–

नीताप्रधर्षमार्त्ताऽऽरक्षिषु निवेदनीयं

क्षामाक्षरैर्लपन्ती कविता कदाचिदेशा।।[5]

पाण्डेय जी इन पंक्तियों में कविता के व्याज से विनष्ट किये जाते शील वाली स्त्री की मर्मान्तक पीड़ा को व्यक्त करने के साथ–साथ समाज की उस संवेदनहीनता की ओर भी संकेत करते हैं जो सहानुभूति के भाव को दबा देती है। उनकी पीड़ा है कि स्त्री अभया नहीं हो पाती, पूर्व में भी वह रावण दुःशासन के द्वारा प्रताड़ित होती रही और आज भी–

परस्मै चरन्ती सनद् भीतभीता।

यथाप्राग्विपन्नाद्यकालेऽपि सीता।।[6]

भारतीय नारी की विवशता, पुरुष के द्वारा किये जाने वाले छद्म और कभी न अन्त होने वाली व्यथा को कवि परमानन्द शास्त्री 'कौन्तेयम्' नामक खण्डकाव्य में प्रस्तुत करते हैं–

देवासुरनगरगन्धर्वदनुजजातीनां,

निर्वैशिष्ट्य सा समा प्रकृतिराद्यन्ता।

प्रागभवत् सम्प्रति भवति भविष्यति भूयो,

नव नवा हि नारीशोषणकथा अनन्ता।।[7]

नारी मनोविज्ञान, नारी के आमसंघर्ष व वेदना की अनुभूति की दृष्टि से परमानन्द शास्त्री का 'मन्थन' (2001) नामक खण्डकाव्य भी उल्लेखनीय है।

आधुनिक–संस्कृत–कविता के स्त्री–विमर्श का सुखद पक्ष यही है कि प्रायः पुरुष कवियों ने स्त्री–संवेदना को मूर्त रूप प्रदान करने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। स्त्री–संवेदना के मर्मज्ञ कवियों द्वारा स्त्री–संवेदना को सक्षम स्वर प्रदान किया गया है। स्त्री द्वारा भोगी गयी असह्य वेदना की भावभूमि पर स्थित होकर ही हर्षदेव माधव जी की कविता 'शकुन्तलाया उक्तिः' उस परम्परा को उपालम्भन देती है जो स्त्री के अंश में केवल पीड़ा, त्याग एवं अश्रुओं का संसार स्वीकार करती है। असह्य पीड़ाओं को सहन करने के पश्चात् भी यह रिक्तहस्ता ही रही–

वयं स्त्रियः/विधवा नेत्रजलनिर्मिताः/वयं स्त्रियः/परमेश्वर निष्वासरचिताः।/वयं नार्यः/परमेश्वरेण निर्मितं दुःखं भोक्तुमेव सृष्टाः! /किन्तु प्रश्नमेकं पृच्छामि/यद्/वनवल्लीपालनासमर्थेन भवता/कस्माद्/ वनाद् उन्मूलिता लता?/कस्माद्/वनाद् उन्मूलिता लता?[8]

पूरी कविता पढ़लेने के अनन्तर अन्तिम पंक्ति तक आते–आते अन्तस् तक पहुँची टीस मर्म को तार–तार कर देती हैं। आधुनिक–सस्कृत–कवियों ने स्त्रियों के सन्त्रास व उनके सामाजिक कौटुम्बिक त्रास को भी अभिव्यक्ति दी है। 'स्नानगृहे' नामक कविता में स्त्री की अनकही पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए हर्षदेव माधव कृत इन पंक्तियों में संवेदना का पराकाष्ठा है–

स्नानगृहं गत्वा/गृहक्लेषं श्रान्ता वधूः/निःशब्दं रोदिति/तदा/ स्नानगृहं/तस्याः पितृगृहं भवति।[9] (बुद्धस्यभिक्षापात्रे, 15)

स्त्री–वेदना की इस उच्च स्तर की अनुभूति कदाचित् संस्कृत–कविता में ही नहीं अपितु अन्य भाशाओं के साहित्य में भी अभूतपूर्व है। भारत में तो स्त्रियाँ सदैव ही संत्रस्त होती रही हैं। कभी पुं नामक नरक से बचने हेतु पुत्र की अभिलाशा में वे माँ के गर्भ में ही अन्तिम साँस ले लेती हैं तो कभी यौतुक–दानव उनके स्वप्नों को जीर्ण–शीर्ण कर देता है, कभी अकारण ही आजीवन सन्ताप सहती हैं तो कभी जीवित ही अग्नि में फेंक दी जाती हैं। कभी अनाचारों से पीड़ित अपनी व्यथा को अभिव्यक्त किये बिना ही इस जगत् से विदा ले लेती हैं। सत्य यही है कि यज्ञ कोई भी हो, आहुति में स्त्री ही डाली जाती है। स्त्री द्वारा सहन की गई अनेकानेक पीड़ाओं का कहीं अन्त नहीं, इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए आधुनिक–संस्कृत–कवि इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव' जी लिखते हैं–

रज्ज्वांषवद्ध्वा स्वगलमथवा रेलमार्गे पतित्वा,
काष्चिद् बाला गरलगुटिकां भक्षयित्वा म्रियन्ते।
अग्नौ दग्ध्वा सुललितं तनुं सागरे वा सरित्सु
ता मज्जित्वा सकलजनतापापामुन्मज्जयन्ति।।

(दूतप्रतिवचनम् 35/29)[10]

अत्याधुनिक तकनीकि के माध्यम से भ्रूणान्तर्गत शिशु का परीक्षण करवाकर कन्या ज्ञात होते ही धरा पर उसके आगमन के अवरोध का निर्णय किसी अन्य द्वारा नहीं अपितु माता–पिता द्वारा ही कर लिया जाता है। अजन्मी बालिका के रूप में नारी की इस अनकही पीड़ा की टीस को अभिव्यक्त करते हुए आधुनिका कवियित्री प्रवेश सक्सेना कहती हैं–

अद्यमातुरंचलस्यदुग्धं विषीकश्तम्ममताप्रदूषितालोचनयोःजलं च शुश्कम्।तदैव सा विवश तया स्वसुखहेतोः वा स्वकन्याम् हन्त्येव ताभ्यामेव हस्ताभ्याम् याभ्यां लालयेत्।

अन्यत्र चडभौ पितरौ गर्भस्थायाः कन्यायाः हननं कृतवाअपि सभ्यौ/सम्मानितौ भवतः एव/अजातायाः कन्यायाः/रुदनं चीत्कारम् वा/ श्रौतुम तौ न समर्थौ।।[11]

नारी की इस त्रासदी का कहीं अन्त नहीं है और सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अब संरक्षण का दायित्व ग्रहण करने वाला ही भक्षक बन गया है। कवियित्री नलिनी शुक्ला इस व्यथा को अपनी कविता 'कियती व्यथा जगत्परिवृत्ते' में व्यक्त करती हैं–

नष्टं शीलमहो! नहि नीतिः
नैवाचार–विचारे प्रीतिः
रक्षक एव भक्षकः सम्प्रति
किं कथयामि? केन वा? कं प्रति?
स्वार्थ, छलं, वंचनं दृश्ये
कियती व्यथा जगत्परिवृत्ते.....
वैधव्यात् काचिद् ह्रदि भग्ना,
यौतुकशापे कापि निमग्ना
क्वापि परिणयोच्छेदोद्भेदः
क्वापि कलहविषशल्योद्वेगः
सौहार्दस्मितिकोषनिवृत्ते

कियती व्यथा जगत्परिवृत्ते.....[12]

असुरक्षा की यह पीड़ा नारी के अंश में युगों–युगों से विद्यमान है तथापि दुविधा यह है कि इस पीड़ा को व्यक्त करना भी उसके अधिकार में नहीं है।

इतनी दीर्घ अवधि से अनेकानेक जटिल आदर्शों के बोझ के नीचे दबी नारी का व्यक्तिगत अस्तित्व तो कभी प्रकट ही नहीं हुआ। वह कभी देवी बनाकर पूजी गई तो कभी पद्दलित की गई; किन्तु वर्तमानकाल के संस्कृत–साहित्य में स्थिति नितान्त भिन्न है। आज जहाँ एक ओर, शंकरदेव अवतरे, उमाकान्त शुक्ल, रामकरण शर्मा इत्यादि कवियों ने नारी के आदर्शमय पारम्परिक स्वरूप में आधुनिक स्वरूप का समावेश सामंजस्य के साथ किया है वहीं हर्षदेव माधव, बनमाली बिश्वाल, इच्छाराम द्विवेदी इत्यादि काव्यकारों की कविता में स्त्री उच्छृंखल व स्वच्छन्द रूप में चित्रित है। वर्तमान परिवेश में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करती नारी का स्वच्छन्द होना स्वाभाविक ही है। अब स्त्री पति–वियोग में मलिनवसना एकवेणीव्रता, ऊष्ण श्वांसोच्छ्वासों से रक्त ओष्ठ वाली और पति–आगमन की प्रतीक्षा में दिन–व्यतीत करने वाली नहीं है, अब आधुनिक नारी अपने मनोनुकूल कार्यों में संलग्न रहती है–

तन्वी श्यामा शिखरिदशना यक्षिणी या त्वदीया
टी0वी0 मध्ये चपलनयना तारिका सा दृश्यते।
कान्ते स्वौं. विमलवटिकं फेनिलं लिम्पमाना,
स्नात्युन्मुक्ता भवति विविधक्रय्यवस्तु–प्रचारे।।

(दूतप्रतिवचनम्–25/9)[13]

नारी का यह उच्छृंखल स्वरूप चरित्रहीनता का बोध नहीं है अपितु उन अत्याचारों का प्रतिकार है जिसने स्त्री को विवशा बना दिया। वह स्वच्छन्द है, उच्छृंखल है तथापि आत्म–सम्मान व आत्माभिमान का भाव कभी–भी तिरोहित नहीं हुआ है। महारानी लक्ष्मीबाई, इन्दिरा गाँधी इत्यादि स्वतन्त्र, स्वाभिमानी नारियों के प्रतिनिधि के रूप में उभरती हैं। तथापि नारी –चेतना के नाम पर कपितय कवियों ने कुछ अतिवादी भावों को भी प्रकट किया है, जैसा कि बनमाली–बिशवाल–कृत 'नारी–नारायणी' नामक काव्य में लिखित हैं।[14] वस्तुतः स्वेच्छाचारिणी होते हुए भी नारी अपनी गरिमा को लेकर सजग है। स्त्री–विमर्श के नाम पर भंग होती सीमाओं को लेकर भी आधुनिक काल के संस्कृत कवियों ने चिन्ता अभिव्यक्त की है–

नारीदलितविमर्शे का वा धुता न वेला।
श्रीलाश्लीलचिन्हं कल्प्यं किमपि नवीनम्।[15]

स्त्री–विमर्श के क्षेत्र में इस प्रकार का उदात्त चिन्तन आधुनिक– संस्कृत–कविता का अपना वैशिष्ट्य हैं, जो अन्य भाषाओं के साहित्य– विमर्शों में अप्राप्य है। आधुनिक–संस्कृत–कविता में स्त्री–विमर्श मर्यादित स्वरूप में ही स्पृहणीय है। निस्सन्देह अतिवादी चिन्तन सदैव परिहरणीय ही होते हैं, वह चाहे आदर्श का हो अथवा कटु यथार्थ का। शंकरदेव अवतरे–कृत 'नारीगीतम्', पण्डित विष्णुकान्त शुक्ल–कृत 'स्फाटिकी माला' आचार्य

रामकरण शर्मा–कृत 'सर्वगन्धा' व 'सिनीवाली' में संकलित कतिपय गीतियों में विविध भावभूमियों और संदर्भों में नारी के गरिमामय आदर्श स्वरूप का स्तवन किया गया है। यह भी आधुनिक संस्कृत कविता के स्त्री–विमर्श का एक पक्ष हैं वहीं दूसरी ओर रेडलाइट एरिया की 'सेक्सवर्कर्स' को भी आधुनिक कवि की लेखनी आकृति देती है, जिसमें उसकी वेदना की भावभूमि पर स्थापित होकर एक पुरुष कवि ने उपेक्षित पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है–

केनापि रामेण त्यक्ता,

केनापि नलेन निर्वासिता

केनापि दुश्यन्तेन वंचिता

केनापि हरिश्चन्द्रेण विसृष्टा.....

वासना–यूपे बद्धा सा

दूयते किन्तु न हन्यते।[16]

पुष्पा दीक्षित, नलिनी शुक्ला, हर्षदा जानी इत्यादि कवियित्रियों की उपस्थिति में भी संस्कृत कवियों द्वारा नारी के मनोभावों को मूर्तरूप प्रदान करना आधुनिक–संस्कृत–कविता के स्त्री–विमर्श का उत्कृष्ट आयाम है। स्त्री–विमर्श के प्रसंग में विष्णुदत्त शुक्ल–कृत 'गंगासागरीयम्' काव्य भी उल्लेखनीय है जिसमें कन्या गौं और पिता हिमवान् के विवाद द्वारा आधुनिक–नारी–स्वातन्त्र्य के विचारों का पोषण किया गया है।[17]

रेवा प्रसाद द्विवेदी–कृत 'सीताचरितम्' एवं अभिराज राजेन्द्र मिश्र–प्रणीत 'जानकीजीवनम्' भी आधुनिक–संस्कृत–काव्य में नारी–चेतना के नवीन भाव– बोध के दृष्टिकोण से महत्त्व के है। यद्यपि ये महाकाव्य विधा की रचनाएँ हैं तथापि सीता–निर्वासन के प्रसंग के द्वारा स्त्री के विवशता व त्यागमयत्त्व स्वरूप का उसके स्वाभिमानी स्वरूप द्वारा निगरण कराकर स्त्री–विमर्श की स्वस्थ परम्परा का विकास किया गया है। सीता–परित्याग का निर्णय केवल राम के ही अधीन नहीं है। आज की सीता पतिपदानुरागिणी एवं विवश होकर पति के सम्मान–वर्धन हेतु निर्वासन के निर्णय को शान्तभाव से स्वीकार नहीं करती अपितु केवल लोकानुरंजन हेतु पत्नी के परित्याग का निर्णय सुनाने वाले राम का स्वयं ही त्याग करती है। यह वर्तमान परिवेश में स्फुरित स्त्री–स्वाभिमान की चरम–परिणति है जिसका प्रतिबिम्बन आधुनिक संस्कृत–कविता में है।

स्पष्ट है कि अर्वाचीन–संस्कृत–काव्य का स्त्री–विमर्श नव–प्रयोग की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पारम्परिक–संस्कृत–कविता में नारी का उल्लेख प्रायः केवल काम–वासना का शमन करने वाली अभिसारिकाओं एवं प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति में भी निर्वहन करने वाली स्वामिभक्ता स्त्रियों के रूप में मिलता है जबकि समकालिक संस्कृत काव्य में नारी जहाँ एक ओर उच्च आदर्शों का प्राणपण से निर्वहन करती है वहीं दूसरी ओर समस्त वेदनादायिका वर्जनाओं का प्रभंजन करती हुई अपने स्वतन्त्र अस्तित्त्व के संस्थापन एवं स्वाभिमान के संरक्षण हेतु भी कृत–संकल्प है।

सन्दर्भ स्रोत :

1 तदेव गगनं सवै धरा, प्रो0 श्री निवास रथ, पृ0 129 (राष्ट्रिय संस्कृत–संस्थान, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1995)

2 भारतोदयः वर्ष 84 अंक 4, पृ0 13

3 संस्कृत साहित्यः बीसवीं शताब्दी, पृ0 36

4 4सर्वगन्धा, 10/12 (मार्च 1987), पृ0 12

5 काक्षेण विक्षीतम्, पृ0 52

6 काक्षेण विक्षीतम्, पृ0 56

7 संस्कृत साहित्यः बीसवीं शताब्दी, पृ0 142

8 तव स्पर्शे–स्पर्शे, पृ0 110

9 वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, पृ0 105

10 आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, लघुकाव्य (प्रो0 हरिदत्त शर्मा), पृ0 221

11 त्रासदी, अनुभूतिः, पृ0 21–22, डॉ0 प्रवेश सक्सेना

12 निर्झरिणी, पृष्ठ 80

13 आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, लघुकाव्य (प्रो0 हरिदत्त शर्मा), पृ0 221

14 ऋतुपर्णा, (बनमाली बिष्वाल), पृष्ठ 31

15 काक्षेण वीक्षितम्, पृष्ठ 66

16 भावस्थिराणि जननान्तरसौह्रदानि, पृष्ठ 71

17 आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास–(लघुकाव्य, पृ0 162)

स्मृति शुक्ला

प्रवक्ता संस्कृत

राजकीय बालिका इण्टर कालेज,

सिराथू, कौशाम्बी

मो0 : 8574823201

E-mail : shuklasmriti978@yahoo.in